SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

आंचलिक उपन्यास की अवधारणा एवं परंपरा

सुशांत चक्रवर्ती, पी–एचडी., हिन्दी विभाग
विवेकानंद महाविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत
रोशनी मिश्रा, पी–एचडी., हिन्दी विभाग
दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Authors
सुशांत चक्रवर्ती, पी–एचडी.
रोशनी मिश्रा, पी–एचडी.
E-mail : chakrabortysushant12@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 01/09/2025
Revised on : 31/10/2025
Accepted on : 09/11/2025
Overall Similarity : 00% on 01/11/2025

शोध सार

स्वतंत्रता पश्चात् गद्य विधा में आंचलिक परिवेश का समावेश कर नए उपन्यासों का सृजन किया गया। इन आंचलिक उपन्यासों में तात्किलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश का यथार्थवादी चित्रण प्राप्त होता हैं। इन आंचलिक उपन्यास में देश के प्रत्येक राज्यों के आंचलिक परिदृश्य का प्रभाव देखने को मिलता हैं। इस प्रकार ये आंचलिक तात्किलिक अंचल के दर्पण स्वरूप हैं।

मुख्य शब्द

आंचलिक उपन्यास, स्वतंत्र्योत्तर, ग्रामीण अंचल, सांस्कृतिक पुनर्जागरण.

आंचलिक उपन्यास में किसी विशिष्ट क्षेत्र के जीवन, संस्कृति और परिवेश विस्तृत और यथार्थवादी चित्रण किया जाता है। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास लेखन में आंचलिक उपन्यास की एक विशिष्ट धारा का विकास हिंदी उपन्यास के क्षेत्र मे नवीन उपलब्धि है। आंचलिक उपन्यास में किसी जनपद या प्रदेश के अंचल विशेष की जनता की बोली लोक संस्कृति, तीज त्योहारों परंपरा धार्मिक व नैतिक विचारों, स्थानीय विशेषताओं आदि का विथक होता है।

हिंदी साहित्य में 1952–54 से आँचलिक शब्द का प्रयोग होने लगा और धीरे–धीरे इतना व्यापक और लोकप्रिय हुआ कि इसने एक साहित्यिक आंदोलन का रूप धारण कर लिया। यह शब्द मुख्यता कथा साहित्य की ही एक समसामयिक धारा के लिए प्रयुक्त किया गया। अंचल को आँचलिकता प्रदान करने वाले कुछ विशेष तत्व होते हैं। इन्हीं तत्वों को अब उपन्यास में स्थान प्रदान किया जाता है, तो वह उपन्यास आंचलिक उपन्यास कहलाता है। डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने

आंचलिक उपन्यास की परिभाषा में कहा है– आंचलिक उपन्यास उन उपन्यासों को कहते हैं, जिनमें किसी विशेष जनपद अंचल (क्षेत्र) के जनजीवन समग्र चित्रण होता है। समग्र का अर्थ है– भाषा, वेशभूषा, उत्पादन के साधन प्रकार विनिमय। संक्षेप में आर्थिक जीवन पर आधारित वर्गो और जातियों के परम्पर संबंध, साहित्य संस्कृति, धार्मिक विश्वास, जीवन दर्शन, स्वास्थ्य, शिक्षा मनोरंजन इन सब विषयों का समावेश होता है।[1]

डॉ. रामचंद्र गुप्त लिखते हैं– आंचलिक जीवन मुख्यतः ग्रामीण होता है और आंचलिक उपन्यास इस स्थानिय यथार्थ की सघनता एवं समग्रता के साथ अनुभव की प्राथमिकता को लेकर प्रस्तुत हुए है।[2] देवराज उपाध्याय ने आंचलिक उपन्यास को परिभाषित करते हुए लिखा है– आंचलिक उपन्यास में लेखक देश विशिष्ट भाग पर बल देता है और वहाँ के जीवन का इस प्रकार निरूपण करता है कि पाठकों को उसके अनोखे गुणों विशिष्ट प्रवृतियों और असामान्य रीति रिवाजों तथा जीवन प्रणाली का ज्ञान हो जाए।[3] डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार– आंचलिक उपन्यास हृदय में किसी प्रदेश की कसमसाती हुई जीवनानुभूति को वाणी देने का अनिवार्य प्रयास है। आंचलिक उपन्यास अंचल के समय जीवन का उपन्यास है।[4]

हिंदी के आंचलिक उपन्यासकारों में नागार्जुन फणीश्वर नाथ रेणु, उदयशंकर भट्ट, शिव प्रसाद मिश्र, रोगेय राघव देवेन्द्र सत्यार्थी आदि है। हिंदी साहित्य के स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास ''मैला आँचल'' से से आंचलिक उपन्यास का सूत्रपात माना जाता है। वस्तुतः हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की श्रृंखला में प्रमुख है– हरिभोध का अधखिला फूल गोपाल दास गहमरी का भोजपुर की ठगी। स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक उपन्यासों की श्रृंखला नागार्जुन का रविनाथ की चाची, 1948 बलचनामा (1962) नई पौध (1983), बदक के बेटे (1957) माना जाता है। रविनाथ की चाची उपन्यास में मिथिला के जनजीवन की कथा, को चित्रित किया गया है। बलचनामा में एक ग्रामीण किसान के पुत्र बलचनमा की कसम गाथा का, उल्लेख है। नई पौध उपन्यास मिथिला के सौराठ मेले के माध्यम से बेमेल विवाह को दर्शाया गया हैं वनज के बैठ उपन्यास में मिथिला के मछुआरों के जनजीवन को चित्रित किया गया है। इसके अलावा बाबा बहेसर नाथ दुख– मोचन आदि आंचलिक उपन्यास नागार्जुन द्वारा लिखे गए है।

ये निश्चित है. कि आंचलिकता को स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश में उभरने का अवसर मिला है। इसका कारण सांस्कृतिक पुनर्जागरण की विश्व व्यापी सक्रिय मानसिकता फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास मैला आँचल को हिंदी का प्रथम आँचलिक उपन्यास माना जाता है। इसमें बिहार के पूर्णिया जिले के मेसगंज गाँव की कहानी है। इस उपन्यास की भूमिका में रेणु जी लिखते है– इसमे फूल भी है, शूल भी है, गुलाल भी है, कीचड भी है, चंदन भी है, सुंदरता भी है, कुरुपता भी है। मैं किसी से दामन बचाकर नहीं निकल पाया।[5]

मैला आँचल से पहले शिवपूजन सहाय का बेहाली दुनिया, (926) में प्रकाशित हो गया था इसमें भोजपुर अंचल के सांस्कृतिक एवं भाषिक विशेषताओं को प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार नागार्जुन के उपन्यास बलचनामा का भी प्रकाशन हो चुका था। यद्यपि उपन्यास रेणु जी से पूर्व गए, किंतु मैला आँचल उपन्यास को ही प्रथम आंचलिक उपन्यास का गया। रेणु जी ने इस उपन्यास के प्रथम संस्करण की भूमिका में स्पष्ट लिखा है – यह है मैला आंचल एक आंचलिक उपन्यास। इस प्रकार उद्घोष किसी अन्य किसी लेखक और समीक्षक ने नहीं किया। रेणु जी ने स्पष्ट किया है– इस उपन्यास की का आधार पुर्णिया जिले का अंचल विशेष है, कोई चरित्र या घटना नहीं पूर्णिया जिले का गाँव मेटीगंज ही इस उपन्यास का कथानक और चरित्र है। इस प्रकार फणीश्वर नाथ रेणु ने आँचलिक आंचलिक उपन्यास के रूप में एक नई विद्या का सूत्रपात किया। आंचलिक उपन्यासों की एक लंबी श्रृंखला मिलती हैं।

हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की दिशा में सर्वप्रथम प्रयास श्री राधेश्याम कौशिक की पुस्तक हिन्दी के आंचलिक उपन्यास है। सन् 1964 में श्री प्रकाश बाजपेयी कृत ग्रंथ 14 उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास मानते हुए उनका सर्वेक्षण हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद नामक ग्रंथ में किया गया है। नालिन विलोचन शर्मा ने शिवपूजन सहाय देहाती दुनिया (1926) को महत्वपूर्ण आँचलिक उपन्यास माना। कहा जाता है कि यह उपन्यास प्रचलित रूढ़ियों को तोड़ने की दिशा में एक साहसिक कदम था। आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी, डॉ नागेन्द्र और डॉ. राम विलास शर्मा ने भी नागार्जुन को रेणु पूर्व आंचलिक उपन्यासकार के रूप में स्वीकार किया है। यह निर्विवाद है कि

रेणु से पूर्व नागार्जुन का उपन्यास बलचनामा 1952 का प्रकाशन हुआ। इसमें दरभंगा जिले की लोक संस्कृति और लोकगीतों से इस अंचल की माटी की सौंधी महक का एहसास होता है। इन सब के बाद भी मैला आँचल ही वह उपन्यास है, जिसने आंचलिक उपन्यासों के प्रतिमान तैयार किये।

मैला आँचल के बाद सन् 1955 में उदयशंकर भट्ट का उपन्यास सागर लहरें और मनुष्य प्रकाशित हुआ। इसमें लंबा समुद्र तक के पूर्व के मछलीमार अंचल बरसोवा के कोली जाति की परंपराओं और रूढ़ियों का चित्रण है। उनके लोक उत्सवों, लोक गीतों और मान्यताओं में समुद्र की छाया रहता है। नारियल पुर्णिमा और होली इनके दो प्रमुख त्योहार है। इन उत्सवों में मधुवा जीवन की सांस्कृतिक झलकियाँ देखने को मिलती हैं। नागार्जुन का सन 1957 में मछुआरों के जीवन पर ही आधारित उपन्यास वरूण के बेटे का प्रकाशन हुआ। बिहार का उत्तर–पूर्वी जिला दरभंगा हमेशा से ही उनके उपन्यास का केन्द्र रहा है। इसमें गोंढ़यारी के मछुवारों के जीवन का वर्णन है। गढ़ पोखर और घनटाचौर नामक जलाशय इनके अस्तित्व का हिस्सा है। आंचलिक उपन्यासों की अगली श्रृंखला में रांगेय राघव का उपन्यास कब तक चुकाएँ का प्रकाशन 1987 में हुआ। यह उपन्यास नट जाति के जीवन पर आधारित है। से जाति गाँव–गाँव जाकर डेरा लगाते हैं। जड़ी बूटी बेचना, भीख माँगना इनके आजीविका का साधन हैं। गण्डे, ताबीज जादूटोना, पीर, भूत चुड़ैल जैसे अंधविश्वासों से घिरे रहते हैं।

राजेन्द्र अवस्थी रचना जंगल के फूल भी आंचलिक उपन्यास की दृष्टि से महत्वपूर्ण कृति है। इसमें मध्यप्रदेश के बस्तर क्षेत्र के गोड जाति के जीवन को उभारा है। इस उपन्यास का कथ्य गोड़ो के अधिकार रक्षा के प्रश्न पर आधारित है। इसमें महुवा, झालर सिंह जैसे पात्रों के माध्यम से वहाँ के आंचलिक जीवन के विविधरंगी चित्र प्रस्तुत किए गए हैं।

राही मासूम रजा का आधा गाँव उपन्यास 1966 में प्रकाशित हुआ। यह गाजीपुर के माँव मंगोली को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। यह पूरे मंगोली की कहानी न होकर वहाँ के मुसलमानों की कहानी है– आधा गाँव। इसमें मुस्लिम जमीदारों के मानसिक द्वंद का चित्रण किया गया है। यही मासूम रजा ने स्वयं लिखा है– यह कहानी ने कुछ लोगों की है न कुछ परिवारों की। यह उस गाँव की कहानी भी नहीं है जिसमें इस कहानी के पात्र अपने आप को पूर्ण करने में लगे। यह कहानी न धार्मिक है, न राजनीतिक। यक कहानी समय ही की हैं। यह मंगोली से गुजरने वाले समय की कहानी हैं।[6]

स्वतंत्रता के उपरांत गाँवों के बदलते परिवेश, उनकी आस्था, अनास्था जीवन की अनगढ़ रीति नीति, अंकाल और गरीबी को आधार बनाकर कई उपन्यास लिखे गए। इसमें शिव प्रसाद सिंह का उपन्यास अलग अलग वैतरणी सन् 1967 में प्रकाशित हुआ। इसमें दो हजार आबादी वाले ग्राम करैता का वर्णन है। आप जो भी कहिए मिसिर जी करेला जैसा बदनाम बीहड़ गिरा हुआ बीमार गाँव शायद ही कोई और है। यहाँ कोई भला आदमी रह ही नहीं सकता इस गाँव के हर व्यक्ति की आत्मा में कोई अस्तित्त, प्यासा बेचैन प्रेत हाहाकार कर रहा है– जहालत गरीबी और तंग ख्याली की पाट एक परत न जाने जमती चली गई हैं।[7] मैला आँचल सारंगा सदब्रिज की लोक कथा जो प्रभाव उत्पन्न करती है, वह प्रभाव यहाँ लखिया नयसिंह और राजकुमार – राजकुमारे कथा में नहीं आ पाता। ये रूप है कि लेखक ने लोक भाषा और खड़ी बोली का मिश्रित प्रयोग करके पूरे परिवेश को जीवन करने में सफलता प्राप्त की हैं। वास्तव में यह उपन्यास देश के बीमार प्रजातंत्र और आजादी के खोखलेपन को उजागर करता हुआ दस्तावेज हैं।

उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के तिवारीपुर नामक गाँव को आधार बनाकर रामदरश मिश्रा द्वारा 'जल टूटता हुआ' नामक उपन्यास लिखा गया। इस गाँव में ब्राम्हण पात्रों की भरमार है। इसके अलावा क्षत्रिय, वैश्य, हरिजन हर तरह के लोग है। पूरा गाँव दो ध्रुवों में विभक्त है। स्वयं उपन्यास कार के शब्दों में यह उपन्यास स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय गाँव के संबंधों तथा मूल्यों के तनाव, विघटन एवं उसके जीवन संघर्षो की कथा है।[8] लोक भाषा की दृष्टि से यह उपन्यास समृद्ध है। एक आँचलिक प्रदेश की ग्रंध, ध्वनियों उसकी लोकोक्ति और मुहावरे से यह उपन्यास सजा हुआ है।

इसी प्रकार आनंद प्रकाश जैन की आठवी भांवर की आंचलिकता उसकी स्वाभाविक व प्रवाहमान भाषा शैली के कारण है। इसका कथ्य पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गोसाईयों की वैवाहिक परंपरा की अदला बदली के रिवाज पर इस कृति में विवेचना की गई है। आँचलिक उपन्यास की परंपरा को और अधिक समृद्ध बनाने में शैलेश मरियानी का महत्त्वपूर्व स्थान है। प्रणय इनका मूल कथ्य है। आंचलिक उपन्यासकारों में भाषा की जी सहजता और सौंदर्य शैलेष में मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने हौलदार, चिठ्ठीसैन, एक मूठ सरसो आदि उपन्यासों के माध्यम से अल्मोड़ा के पर्वतीय दीवल की कथा, उस क्षेत्र के प्रचलित शब्दों को मुहावरों व लोकोक्तियों को सकार किया हैं।

सन् 1992 मे कथाकार जगदीशचंद्र का उपन्यास धरती धन न अपना का प्रकाशन हुआ। पंजाब के होशियारपुर जिले के एक गाँव छोड़वाहा के अशिक्षा, अज्ञान, अंधविश्वास और पौथरियों के जातीय अहंकार और उस्से प्रभावित मजदूरों का चित्रण उपन्यास का मूल कथ्य है। विवेकी राय के उपन्यास सोना माटी भी ऐसा ही उपन्यास इसमें आजादी के बाद बदलते परिवेश ने ग्रामीण जीवन की झांकी प्रस्तुत की गई है। इधर मैत्रेयी पुष्पा उपन्यास इदननमम (1994) में, विवेकी राय का उपन्यास बबूल (1975) लोकण (1977) मंगल भवन (1992) उपन्यास भी आँचलिकता से युक्त हैं। इस प्रकार आँचलिक उपन्यासों में परतीपरिकथा कुम्भीपाक, बया का घोसला, छिन्नमस्ता उपन्यास भी आंचलिकता की श्रृंखला में महत्वपूर्ण हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से ये स्पष्ट होता है कि आंचलिक उपन्यासों ने स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी साहित्य में एक नई विधा की शुरुआत की। समाज विहित यथार्थ बड़ी निकटता निकटता से देखा। आज आंचलिकता को केन्द्र बनाकर साहित्य–सृजन की प्रवृत्ति कम हो गई हैं। इसका कारण भूमंडलीकरण वैश्वीकरण को माना जा सकता हैं। आंचलिक उपन्यास की अवधाख्य एवं –परंपरा में हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया हैं।

संदर्भ सूची

1. नागर, अमृत लाल (1956) *बूँद और समुद्र,* किताब महल, इलाहाबाद, पृ. 361।
2. राय, गोपाल (2002) *हिंदी उपन्यास का इतिहास,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 65।
3. राय, गोपाल (2006) *हिंदी उपन्यास की संरचना,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 115।
4. मिश्र, रामदरश (1968) *हिंदी उपन्यास की अतंर्यात्रा,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 32।
5. रेणु, फणीश्वर नाथ (1954) *मैला आँचल,* प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 45।
6. रजा, राहि मासूम (1966) *आधा गाँव,* प्रथम संस्करण, भूमिका राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 344।
7. सिंह, शिव प्रसाद (1967) *अलग–अलग वैतरणी,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 350।
8. मिश्र, रामदरश (1969) *जल टूटता हुआ,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 285।

****